1

भारतीय संगीत का उद्गम एवं विकास

भारतीय शास्त्रीय संगीत कई शताब्दियों से होते हुए एक सूक्ष्म एवं वैभवशाली कला के रूप में विकसित हुआ है। विभिन्न प्रकार की संगीतात्मक संरचनाओं (रागों), स्वरों के अलंकरणों तथा लयात्मक संयोजनों के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय संगीत प्रस्तुतकर्ता और श्रोता की भावात्मक अथवा रस अनुभूति का मेल करने का प्रयास करता है। भारत में शास्त्रीय संगीत का संगीत के अन्य प्रकारों, जैसे –लोक, भक्ति, नृत्य, ओपेरा, सुगम, कथा कलाक्षेप इत्यादि के साथ एक समपूरक संबंध है। भारतीय शास्त्रीय संगीत भारतीय संस्कृति का अंग है। संगीत भारत में दैनिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। सिद्ध पुरुषों के लिए अध्यात्मिक अनुभूति एवं भगवान को प्राप्त करने का मार्ग होने के साथ यह सामान्य व्यक्ति के लिए एक सुखद मनोरंजन माना जाता है. पुराणों में हमें शिव, कृष्ण और सरस्वती का वर्णन मिलता है, जो नाद, बांसुरी और वीणा से संबंधित हैं। तुमबुरू, नारद, नन्दी एवं अन्य दिव्य गण भी कुशल संगीतज्ञ माने जाते हैं। इन सभी आयामों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक अलौकिक स्वरूप प्रदान किया। शास्त्रीय संगीत की महत्ता यह है कि वह लोक, भक्ति, नृत्य, ओपेरा, सुगम, कथा कलाक्षेप इत्यादि सभी प्रकार के संगीत के साथ संबद्ध है। इन प्रकारों का विकास भी शास्त्रीय संगीत के साथ ही साथ एक दूसरे के समपूरक के रूप में हुआ।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात शिक्षार्थी:

- कर्नाटक शास्त्रीय संगीत की समृद्ध धरोहर के संरक्षण के लिये म्यूजिकोलोजी के महत्त्व को पहचान पायेगा;
- उन विभिन्न कालों को पहचान पायेगा जब महत्त्वपूर्ण टीकायें एवं संयोजक अस्तित्व में आये तथा मील के पत्थर स्थापित किये गये;

- स्वर्ण युग के सांगीतिक त्रिदेव का वर्णन कर पायेगा एवं ललित कला के रूप में संगीत के बहुमुखी विकास की सराहना कर पायेगा;
- संचार माध्यमों के विकास एवं शास्त्रीय संगीत की कला के संरक्षण तथा प्रसार में उनके योगदान के ज्ञान को अर्जित कर पायेगा
- वैदिक काल की केवल एक आध्यात्मिक कला पद्धति से आधुनिक काल की एक भली प्रकार से विकसित संगीत कला के रूप में संगीत के विकास का अनुगमन कर पायेगा

1.1 भारतीय संगीत के इतिहास के तीन प्रमुख काल

भारतीय संगीत के इतिहास का अध्ययन प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक, तीन प्रमुख कालों में किया जा सकता है। प्राचीन संगीत का युग वैदिक काल से संगीत रत्नाकर के समय तक माना जाता है, जिसके पश्चात संगीत की मध्य कालीन पद्धति का विकास हुआ। लगभग 14वीं शताब्दी के इस काल में भारतीय संगीत दो शाखाओं में विभाजित हो गया- हिंदुस्तानी तथा कर्नाटक पद्धति। ये दोनों शाखायें पूर्णतया विकसित एवं स्थापित हो गयीं। इस काल में असंख्य म्यूजिकोलोजिस्ट तथा संयोजक अस्तित्त्व में आये तथा उन्होंने राग, ताल एवं संगीत की विधाओं को समृद्ध किया।

1.2 प्राचीन काल

वेद, अगम, उपनिषद, वायु पुराण, बृहद्धर्म पुराण, रामायण, महाभारत, भागवत, शिक्षा ग्रंथ इत्यादि जैसे हमारे देश के प्राचीन साहित्य में शास्त्रीय संगीत के मूल सिद्धांतों के बहुमूल्य उल्लेख मिलते हैं, जैसे- सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनायें, तीन लय (गति), नव रस, तीन स्थान (सप्तक), 22 श्रुतियां आदि। नारद परिव्रजकोपनिषद में सर्वप्रथम सप्त स्वर का उल्लेख है। वैदिक युग में आधार षड्ज की अवधारणा नहीं थी। वेदों के पाठ के लिये केवल स्वर युक्त संगीत का प्रयोग किया जाता था। वेद प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं संस्कृति का अमूल्य कोष हैं। चार वदों में से साम वेद से ही संगीत का उद्गम माना जाता है। वैदिक गायन केवल एक स्वर के गायन से आरंभ हुआ। धीरे-धीरे, पाठ करने की एक अच्छी और आकर्षक शैली खोजने में क्रमशः दो और फिर तीन स्वरों का उपयोग होने लगा। अंत में सात मूल स्वरों के सप्तक स्थापित हुए, जो बाद में वैदिक पठन के संगीत कला में परिवर्तित होने की पराकाष्ठा पर पहुंचे। इस प्रक्रिया में सदियां बीत गयीं।

आज के वाद्यवृंद एवं संगीत सभा, दोनों का उद्गम प्राचीन काल में हुआ है।यज्ञों में वैदिक मंत्र यज्ञ अग्नि की परिक्रमा करते हुए तंत्री एवं ताल वाद्यों के साथ नृत्य करते हुए गाये जाते थे। तत्पश्चात, समूह में वाद्यों का बजाना 'कुतप' कहलाया जाने लगा। कुतप वाद्यवृंद का आरंभिक रूप है। राग की अवधारणा का तब तक उद्भव नहीं हुआ था। इन्हें सप्तस्वरों के अनुसार मिलाकर खुले तारों पर बजाया जाता था। मनोधर्म संगीत तथा संगीत की स्वरलिपि, जैसा आजकल हम जानते हैं, का अस्तित्व नहीं था। वेदों के पाठ की धुन के उतार-चढ़ाव हस्तलेखों पर संकेतात्मक

टिप्पणी

रूप से अंकित होते थे, जबकी लय अंगुलियों के विशेष संचालन द्वारा बतायी जाती थी। धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त, हमारे प्राचीन मंदिरों और गुफाओं में मिलने वाले मूर्तियों और चित्रों ने भी समकालीन संगीत के बहुमूल्य प्रमाण सुरक्षित रखने में योगदान दिया है। दक्षिण में चेरा राजाओं के दरबार में एक प्रसिद्ध विद्वान, इलांगो अडिगल ने सिलप्पदिकारम में उल्लेख किया है कि प्राचीन तमिलों ने मूल संगीत विचारों का विकास प्रथम शताब्दी के आरंभ में ही कर लिया था। महेंद्र वर्मा (7वीं ई.) ने कुडुमियामलई शिलालेखों में समकालीन संगीत तथ्यों का उल्लेख कर के करनाटक संगीत की विशेष सेवा की है।

प्राचीन तमिल संगीत में कई 'पन' प्रयुक्त होते हैं,जो रागों के समकक्ष होते हैं। स्थान (सप्तक) का उन्हें ज्ञान था। श्रुतियों और 12 स्वर स्थानों से वे अवगत थे। करुनामृत सागर एक अन्य तमिल ग्रंथ है जिसमें संगीत के कई रोचक तथ्यों का विवरण है।

1.2.1 ग्रंथ

आरंभिक समय से भारतीय संगीत और म्यूजिकोलोजी (लक्ष्य एवं लक्षण) का निरंतर विकास हुआ है। संगीत की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के अनुसार लक्षणों का निरंतर रूपांतरण किया गया अथवा उन्हें पुन: लिखा गया। परंपरा के ढांचे में नये लक्षणों का निरंतर समावेश एवं अंगीकरण हुआ। ग्रंथों में पूर्वकालिक संगीत और म्यूजिकोलोजी तथा अंगीकृत परिवर्तनों का स्पष्ट विवरण दिया गया है। उनका प्रमुख केंद्र सैद्धांतिक पक्षों पर था। इस प्रदर्शनकारी कला का क्रियात्मक भाग मौखिक परंपरा से गुजरता था तथा ग्रंथों में इसका उल्लेख सूत्रों के रूप में हुआ है, अत: हमें तत्कालीन संगीत के स्वरूप का केवल एक धुंधला अनुमान है।

भरत, मतंग और नारद जैसे सुविख्यात ऋषियों ने संगीत के प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे हैं। दूसरी शताब्दी के आरंभ में ही भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र लिखा जिसमें उन्होंने 28 से 34 अध्याय तक भारतीय संगीत का उल्लेख किया है। उन्होंने संगीत वाद्यों का तत, सुषिर, अवनद्ध और घन श्रेणियों की वर्गीकरण पद्धति के अनुसार वर्णन किया है।यह वर्गीकरण अभी भी पूर्णतया स्वीकृत है। भारत ने अपनी ध्रुव एवं चल वीणा के माध्यम से प्रयोग किया और 22 श्रुतियों को परिगणित किया।

प्रारंभिक उपनिषदों में से एक, नारद परिव्रजक में सप्त संगीत स्वरों का उल्लेख किया गया है। सांगीतिक ग्रामों, सप्त स्वरों एवं 22 श्रुतियों तथा उनका सप्तक में विभाजन सांगीतिक अवधारणाओं के मील के पत्थर थे, जिनसे अंतत: रागों का विकास हुआ। दसवीं शताब्दी के लगभग म्यूजिकोलोजी और संगीत के प्राय: सभी मौलिक तत्त्वों का पूर्ण रूप से अवतरण हो गया था। भारतीय संगीत के सात सोल्फा स्वर, स, रि, ग, म, प, ध, नि, अरब और फारसी देशों से होते हुए यूरोपीय देशों तक पहुंचे तथा वहां के संगीत को प्रभावित किया जो अभी आरंभिक स्थिति की कला थी। पश्चिम ने C, D, E, F, G, A, B को अपने चर्च संगीत के लिये सात सोल्फा अक्षरों के रूप में ग्रहण किया। भारतीय संगीत मेलडी शैली में निरंतर विकसित होता रहा, जबकी पाश्चात्य संगीत का विकास हार्मनी शैली में हुआ।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. भारतीय संगीत के इतिहास में प्रमुख काल कौन से हैं?
2. भारतीय शास्त्रीय संगीत दो भागों में कब विभाजित हुआ?
3. शास्त्रीय संगीत के दो मूल सिद्धांतों के नाम बताइये।
4. कुडुमियामलई शिलालेख महत्त्वपूर्ण क्यों है?
5. संगीत के ग्रंथ महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?
6. प्राचीन काल के दो ग्रंथों तथा उनके लेखकों के नाम बताइये।
7. कुतप क्या है?
8. सप्त स्वर पश्चिम में कैसे पहुंचे?

1.3 मध्य काल

13वीं शताब्दी के लगभग संपूर्ण भारत में संगीत की एक ही प्रणाली थी। सप्त स्वर, सप्तक, श्रुति इत्यादि, एक प्रकार के मौलिक सिद्धांत विद्‌धमान थे। हरिपाल ने सर्वप्रथम हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत के पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया। उत्तर में मुस्लिम शासन के प्रादुर्भाव से भारतीय संगीत कला एवं अरबी तथा ारसी संगीत प्रणालियों का परस्पर प्रभाव पड़ा। मुस्लिम शासकों के दरबार में संरक्षण से भारतीय संगीत नयी दिशा में प्रसरित हुआ। इसकी तुलना में, दक्षिण भारत बिना किसी विदेशी आक्रमण अथवा उथल- पुथल के स्थिर रहा। वहां वह मंदिरों और परंपरागत हिंदू राजाओं के प्रोत्साहन से लगातार प्राचीन परंपरा के अनुसार उन्नत और समृद्ध होता रहा। एक ही स्रोत, वेदों, से उत्पन्न हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत दो स्वतंत्र प्रणालियों के रूप में विकसित हुईं।

देश में 7वीं शताब्दी से भक्ति आंदोलन के समय सैंकड़ों संत गायक और धार्मिक शिक्षक हुए। तमिल क्षेत्र में शैव और वैष्णव संतों ने तेवाराम और दिव्य प्रबंध लिखे। भक्ति संगीत गायक जैसे पुरंदर दास, भद्राचल राम दास, अन्नामाचार्य, मीरा बाई, सूर दास, कबीर दास, तुलसी दास, गुरु नानक और अन्य संत गायकों ने हजारों सरल भक्ति गीतों की रचना की। ये गीत भक्ति, नैतिक जीवन और सार्वभौमिक प्रेम के संदेश सहित सरल लय और प्रभावी धुनों में रचे गये। जन साधारण तक पहुंचने के लिये इन गीतों के लिये प्रादेशिक भाषाओं का कफी प्रयोग किया गया। दक्षिण में इन गीतों में पल्लवी, अनुपल्लवी अथवा चरणा के सरल आकार युक्त प्राचीन प्रबंधों के लक्षण थे, जो भविष्य के लिये रत्नजटित कृति का केंद्र बन गये।

हरिदासों में संत पुरंदर दास, जो 'कर्नाटक संगीत के पितामह' के रूप में पूजनीय हैं, एक प्रमुख संयोजक माने जाते हैं। पुरंदर दास ने 108 प्राचीन तालों को 35 तालों की प्रणाली के रूप में

टिप्पणी

सरलीकृत किया, जिसमें 7 सूलादि ताल और उनके 5 प्रकार (जाति) सम्मिलित थे। उन्होंने मलहारी राग में सरली वरीसई, सप्त ताल अलंकार, गीतों को सूत्रबद्ध किया और प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिये अभ्यासगान को व्यवस्थित किया। पुरंदर दास द्वारा परिगणित तालों की नयी प्रणाली में प्राचीन ताल प्रणाली के षडंगों के स्थान पर लघु, द्रुत और अनुद्रुत का प्रयोग किया गया है। चापु ताल का कीर्तन या दसरा पदगलु नामक असंख्य भक्ति गीतों में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है।

इस काल में रागों के वर्गीकरण अधिक स्पष्ट हुए। राग भारतीय संगीत की आत्मा है और अंतर राष्ट्रीय संगीत को भारत कि देन है। विद्यारण्य (14वीं शताब्दी) ने अपने ग्रंथ संगीत सार में 15 मेल और उनके जन्य राग बताये हैं। रामामात्य (16वीं शताब्दी) ने अपने ग्रंथ स्वरमलकलानिधि में 20 मेल बताये हैं। यह ग्रंथ भारतीय संगीत के 2000 वर्ष के इतिहास के विकास का वर्णन तथा आधुनिक कर्नाटक संगीत की प्रस्तावना है। अन्य ग्रंथों सहित इन ग्रंथों में प्रत्येक राग के लिये विशेष गमक युक्त राग लक्षणों का उल्लेख है। कर्नाटक संगीत में रागें किसी विशेष स्वर को अलंकृत करने के लिये केवल विशेष गमक अलंकारों के प्रयोग से जीवंत होती हैं।

17वीं शताब्दी में व्यंकटमखी द्वारा रचित चतुरदंडी प्रकाशिका का आविर्भाव हुआ। यह एक पथ प्रदर्शक ग्रंथ था जिसके माध्यम से आधुनिक संगीत के इतिहास का आगमन हुआ। इस ग्रंथ के अंतर्गत 16 स्वरस्थानों पर आधारित 62 असंपूर्ण मेलकर्ता पद्धति को परिगणित किया गया है। उस समय केवल 19 मेलों का प्रचलन था। समस्त 72 मेल, उनके जन्य राग एवं विवादी मेल संगीतात्मक संभावनायें थीं। इस प्रणाली को कनकांबरी-रत्नांबरी पद्धति कहा गया। बाद में गोविंदाचार्य ने इस पद्धति को 72 संपूर्ण मेल पद्धति की भांति संशोधित एवं पुनर्निर्मित किया, जिसे कनकांगी-रत्नांगी पद्धति कहा गया। इस पद्धति के अंतर्गत मेल क्रम संपूर्ण आरोहण एवं अवरोहण युक्त थे। 72 मेल कर्ता पद्धति ने विशेष लक्षण युक्त असंख्य जन्य रागों के उद्‌भव के लिये जल द्वार खोल दिये। मध्य और आधुनिक काल के संयोजकों ने नव-निर्मित रागों में असंख्य रचनाओं का निर्माण किया। संगीत त्रिमूर्ति में मुत्तुस्वामी दीक्षितर ने व्यंकटमखी की असंपूर्ण मेल पद्धति का अनुसरण किया, परंतु त्यागराज और श्यामा शास्त्री ने गोविंदाचार्य की संपूर्ण मेल पद्धति का अनुसरण किया। आजकल संपूर्ण मेल पद्धति प्रचलित है।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. भारतीय संगीत में मध्य काल में होने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन बिंदु क्या है?
2. भारतीय शास्त्रीय संगीत के विभाजन का प्रमुख कारण क्या था?
3. भक्ति आंदोलन के किंहीं तीन संत गायकों के नाम बताइये।
4. भक्ति आंदोलन संगीत के विकास के लिये महत्त्वपूर्ण क्यों माना जाता है? संक्षेप में लिखिये।
5. दो लक्षणकारों तथा उनके मध्य कालीन ग्रंथों के नाम बताइये।
6. व्यंकटमखी की चतुरदंडी प्रकाशिका इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है? संक्षेप में लिखिये।

टिप्पणी

7. संशोधित संपूर्ण मेल पद्धति का प्रचलन किसने किया?

8. वर्तमान संगीतज्ञों द्वारा कौन सी मेल पद्धति का अनुसरण किया जाता है?

1.4 18वीं शताब्दी- स्वर्ण युग

इस युग में संगीत विधाओं, रागों, तालों, संगीत वाद्य, संगीत स्वरलिपि पद्धति इत्यादि का गुण और संख्या दोनों में बहुमुखी विकास और कार्य कलाप हुआ। विद्वत्तापूर्ण संगीत विधाओं जैसे भली भांति अलंकृत कृति, स्वरजति, वर्ण, पद, तिल्लाना, जावली, रागमालिका इत्यादि की रचना बड़ी संख्या में हुई। यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि विभिन्न विधाओं की इन सभी रचनाओं के मूल तत्त्व प्राचीन प्रबंधों से लिये गये हैं। केवल सांगीतिक और साहित्यिक पक्ष, इन भागों ने नयी रचनाओं में परिष्कृत और रूपांतरित आकार ग्रहण किया। सांगीतिक रचनाओं की सुरक्षा और संरक्षण के लिये स्वरलिपि का प्रयोग किया गया और वर्तमान पीढ़ी भाग्यशाली है कि उनके लिये पहले की बहुमूल्य रचनायें उपलब्ध हैं।

हिंदुस्तानी संगीत के लिये भी 18वीं-19वीं शताब्दी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने ठाठ प्रणाली के अंतर्गत हिंदुस्तानी रागों को क्रमबद्ध किया। ख्याल, ठुमरी और तराना जैसी विभिन्न रचनात्मक विधाओं की रचना हुई। उस्ताद अल्लादिया खां, पंडित ओंकार नाथ ठाकुर, पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां जैसे प्रसिद्ध और प्रमुख संगीतज्ञ अगली सदी के ऐतिहासिक चरित्र हुए। आगरा, ग्वालियर, जयपुर, किराना, लखनऊ इत्यादि प्रमुख घरानों की स्थापना हुई। इसी काल में पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत की भी समृद्धि और विकास हुआ। बाक, हेडन और बिथोवन जैसे ऐतिहासिक सांगीतिक चरित्र, जो पाश्चात्य संगीत की त्रिमूर्ति माने जाते हैं, अस्तित्व में आये और पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत को नयी उंचाईयों तक ले गये। वेगनर एक अन्य रचनाकार था जिसने पाश्चात्य संगीत को समृद्ध किया।

1.4.1 कर्नाटक संगीत के इतिहास में संगीत त्रिमूर्ति का स्वर्ण युग

12वीं शताब्दी के पश्चात्, जयदेव (अष्टपदी- गीत गोविंद), नारायण तीर्थ (तरंग-कृष्ण लीला तरंगिणी), अरुणागिरी नाथर (तिरप्पुगझ), अन्नामाचार्य (संकीर्तन), क्षेत्रग्न (पद), गिरिराज कवि की सरल कृतियां, मार्गदर्शी शेशा अय्यंगर, मेलत्तुर वीर भदरय्या, पल्लवी गोपाल अय्यर, रामस्वामी दिक्षितार, अपि अपय्या (वीरिबोनी-भैरवी-अत्ता ताल), सोंती व्यंकटरमय्या (त्यागराज के गुरु) तथा अन्य जैसे कई रचनाकारों अथवा संयोजकों ने अपनी रचनाओं की विस्तृत विविधताओं से त्रिमूर्ति के पूर्ववर्ती चरण को समृद्ध किया। अत:, नींव तैयार हो चुकी थी। वर्ण, कृति इत्यादि जैसी आधुनिक संगीत विधायें अपने रचनाकारों द्वारा परिभाषित हो चुकी थीं। प्रयोग में आने वाली रागों की संख्या में वृद्धि हुई। सरलीकृत ताल पद्धति ने इन्हें और अधिक बल दिया। ये सभी रचनाकार, म्यूजिकोलोजिस्ट और विद्वान कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति के स्वर्ण युग के अग्रगामी थे।

श्री श्यामा शास्त्री, श्री त्यागराज तथा श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितर कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति के रूप

में जाने जाते हैं। उन्होंने अप्रयुक्त नई और दुर्लभ रागों में सैंकड़ों कृतियों की रचना की। ये कृतियां संगीतात्मक रूप से श्रेष्ठ हैं और उन रागों के लिये आदर्श मानी जाती हैं। ये तीनों समकालीन थे तथा तंजौर क्षेत्र के तिरुवरूर में जन्मे थे। उनके बहुत से शिष्य थे जो अपने शिक्षकों की अमूल्य रचनाओं को संग्रहीत तथा सुरक्षित रखने में सहायक हुए। कालांतर में उनमें से बहुत से शिष्य स्वयं महत्त्वपूर्ण रचनाकार बन गये तथा पहले से ही समृद्ध संगीत संग्रह में योगदान दिया।

1.4.2 श्री श्यामा शास्त्री (1963-1827 ई.)

त्रिमूर्ति में श्री श्यामा शास्त्री सबसे बड़े थे। उनकी अधिकतर कृतियां कांची की कामाक्षी देवी की प्रशंसा में हैं। कृतियां तेलगु तथा संस्कृत दोनों में हैं। वे राग भाव तथा साहित्य भाव से परिपूर्ण हैं। उनकी तीन विद्वत्तापूर्ण स्वर्जतियां तीन रत्नों के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने मदुरई की मीनाक्षी पर 9 कृतियों की रचना की है, जो नवरत्नमालिका के नाम से जानी जाती है। उन्होंने अपनी कृतियों के लिये चापु तालों का भलिभांति प्रयोग किया है। उन्होंने पहली बार विलोम चापु का प्रयोग किया।

उनकी कृतियां मुख्यतया लय की श्रेष्ठता के लिये मानी जाती हैं । स्वरसाहित्य और स्वराक्षर उनकी कृतियों को अलंकृत करते हैं। उन्होंने मंजी, अहीरी, कलगड, चिंतामणी इत्यादि जैसी दुर्लभ रागों का प्रयोग किया है। ऐसा माना जाता है कि श्यामा शास्त्री ने लगभग 300 रचनाओं का संयोजन किया, परंतु अब तक केवल 50 रचनायों के लगभग उपलब्ध हैं।

1.4.3 श्री त्यागराज (1767-1847 ई.)

ऐसा माना जाता है कि श्री त्यागराज ने लगभग 1000 कृतियों से अधिक की रचना की है। लगभग 750 रचनायें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें विद्वत्तापूर्ण एवं सरल कृतियां सम्मिलित हैं। उन्होंने सैंकड़ों रागों का प्रयोग किया। वे भगवान राम के भक्त थे। उनकी अधिकतर कृतियां तेलगु तथा कुछ संस्कृत में हैं। उन्होंने घन राग पंचरत्न कृति जैसी कुछ समुदाय कृतियां (समूह कृति) तथा अन्य पंचरत्न समूह जैसे कोवूर, लालगुडी, तिरूवत्तियूर और श्रीरंगम पंचरत्न की रचना की। उन्होंने दिव्यनाम संकीर्तन, उपचार तथा उत्सव संप्रदाय कृति समूहों की भी रचना की जिनका प्रयोग सामुहिक संगीत में सरलता से होता है। उन्होंने अपनी कुछ कृतियों के लिये देसादि और मध्यादि तालों का प्रयोग किया है। संगतियां, बहु चरण व अतीत-अनागत एडप्पु कृति विधा के लिये उनका योगदान है। उन्होंने तीन सुंदर संगीत ओपेरा- प्रहलाद भक्ति विजयम, नौका चरित्रम और श्री सीता राम विजयम की रचना की। उनका अनुसरण करने वाले विद्यार्थी त्यागराज की बहुमूल्य संगीत विरासत को सुरक्षित तथा प्रचलित करने के लिये उत्तरदायी थे।

1.4.4 मुत्तुस्वामी दीक्षितर (1775-1835 ई.)

त्रिमूर्ति में दीक्षितर सबसे छोटे थे।वे श्री विद्या उपासक थे और उन्होंने देवी पर अधिकतर ख़तियों की रचना की। उन्होंने असंख्य शैव और वैष्णव देवताओं का अपनी तीर्थ यात्राओं में दर्शन करके उन पर रचनायें की। उनकी विद्वत्तापूर्ण रचनाओं में भारतीय दर्शन, ज्योतिष, तंत्र शास्त्र तथा हिंदु

संस्कृति के विषय में उनके गहन ज्ञान का पता चलता है। उनकी सभी कृतियां संस्कृत में हैं और उनकी साहित्यिक वस्तु उच्च स्तरीय होने से सामान्य जन को समझने में थोड़ा कठिन है। कृतियां संगीत और साहित्य सौंदर्य जैसे स्वराक्षर, कई मुद्रायें, समष्टि चरण, मध्यम कला साहित्य, यति प्रास इत्यादि से प्रकाशमान हैं। व्यंकटमखी की असम्पूर्ण मेल पद्धति की रागें दीक्षितर ख्रतियों में जीवित हैं जिनमें रचयिता ने राग मुद्राओं का सुंदरता पूर्वक परिचय दिया है। दीक्षितर विद्वत्तापूर्ण समूह कृतियों के प्रवीण रचियता थे। इनके कुछ उदाहरण हैं नवग्रह कृति (ज्योतिष विज्ञान), कमलंबा नववर्ण (तंत्र शास्त्र), पंचभूत लिंग कृति (हिंदु दर्शन शास्त्र), त्यागराज विभक्ति कृति (योग) इत्यादि। उन्होंने मणीप्रवल और सुंदर रागमालाओं की भी रचना की है। दीक्षितर के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों, शिष्य परंपरा ने उनकी परंपरा को प्रचलित किया।

1.4.5 स्वाति तिरुनल महाराज (1813-1847 ई.)

स्वाति तिरुनल महाराज ने बहुत सी रचनायें बनाई और वे महान त्रिमूर्ति के सबसे छोटी उम्र के समकालीन थे। उनका दरबार प्रतिभाशाली विद्वान, संगीतज्ञ और कलाकारों से परिपूर्ण था। उन्होंने वर्ण, कृति, जावली, तिल्लाना, कई भाषाओं में भजन तथा धरुपद, खयाल इत्यादि उत्तर भारतीय संगीत विधाओं जसी कई रचनाओं का संयोजन किया। वे एक महान विद्वान थे और उन्होंने कुचेलोपख्यान और अजमिलोपख्यान जैसे ओपेरा भी रचे। उनकी नवरात्रि कृति और नवविद्या भक्ति कृति प्रसिद्ध हैं। दुर्भाग्यवश उनकी 34 वर्ष की अल्प आयु में ही मृत्यु हो गई। उनके कोई विद्यार्थी न होने के कारण उनकी रचनाओं को प्रकाश में आने में कई वर्ष लग गये।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. कर्नाटक संगीत के विकास के लिये ङ्कल्लवीं शताब्दी महत्त्वपूर्ण क्यों है?
2. संगीत के स्वर्ण युग के महत्त्वपूर्ण तत्त्व क्या हैं?
3. स्वर्ण युग के दो रचनाकारों के नाम बताइये।
4. संगीत के त्रिमूर्ति कौन थे? उनके नाम बताइये।
5. गीत गोविंद किसने लिखा था?
6. प्रहलाद भक्ति विजयम क्या है और उसकी रचना किसने की?
7. सब प्रकार की रचनाओं का उद्‌गम क्या है?
8. संगीत त्रिमूर्ति में प्रत्येक की एक समुदाय ख्रति का नाम लिखिये। संक्षेप में लिखिये।

1.4.6 सुब्बराम दीक्षितर

सुब्बराम दीक्षितर बालु स्वामी दीक्षितर के नाती थे। बालु स्वामी दीक्षितर ने अपनी पुत्री के पुत्र सुब्बराम दीक्षितर को गोद लिया जो बहुत प्रतिभाशाली, विद्वान और एक संगीतज्ञ एवं रचयिता

दोनो रूप में श्रेष्ट थे। 1903 ई. में उन्होंने विस्तृत संगीत प्रदर्शिनी प्रकाशित की। व्यंकटमखी की असंपूर्ण मेल पद्धति पर आधारित दीक्षितर परंपरा को संरक्षित करके कर्नाटक संगीत की बहुमूल्य सेवा की है। संप्रदाय प्रदर्शिनी राग लक्षण, लक्षण गीत, वर्ण, कृति, राग मालिका इत्यादि का संग्रह है। इसमें अन्य पूर्व त्रिमूर्ति ऐतिहासिक रचयिताओं की कुछ रचनाएं भी हैं। प्रथम मेल और उसकी जन्य रागों से आरंभ होते हुए मुत्तुस्वामी दीक्षितर की मौलिक स्वर लिपि सहित सभी कृतियों को व्यवस्थित रूप में दिया गया है। शेष मेल 72 मेल तक इसी क्रम में आते हैं। इसमें 1700 पृष्ठ हैं और 76 संगीतज्ञों/रचयिताओं की जीवनियां हैं। सुब्बराम दीक्षितर स्वयं एक रचयिता थे और उन्होंने आनंद भैरवी, सुरति इत्यादि जैसी रागों में विद्वत्तापूर्ण कृतियों की रचना की है। उन्होंने कई वर्ण तथा रागमालिका भी रचे हैं। उन्हें संगीत तथा म्यूजिकोलोजी पर लिखी गई प्रथमाभ्यासम पुस्तक लिखने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने एक तमिल नाटक वल्लिभरतम की भी रचना की।

त्रिमूर्ति काल के पश्चात उनके कई विद्यार्थी जो संगीतज्ञ और रचयिता बने, उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया गया है।

1.4.7 त्यागराज के विद्यार्थी और अनुगामी

वालाजपेत व्यंकटरमन भागवतर, वीना कुप्पय्यर, आया भागवतर, पटनम सुब्रमन्य अय्यर, सुब्बराम भागवतर, तिल्लैस्थानम राम अय्यंगर, उमयलपुरम कृष्ण भागवतर, सुंदरा भागवतर, मैसूर वासुदेवाचार, रामनाडु श्रीनिवास अय्यंगर आदि।

1.4.8 दीक्षितर के विद्यार्थी और अनुगामी

पोनिया, वादिवेलु, शिवनंदम और चिनय्या जो तंजौर कौर्टेट के नाम से प्रसिद्ध हैं, तिरुवरूर, अय्यास्वामी, उनके अपने छोटे भाई बालुस्वामी और चिन्नास्वामी एत्तयापुरम के राजा, सुब्बराम दीक्षितर एवं अन्य।

1.4.9 श्यामा शास्त्री के विद्यार्थी और अनुगामी

अन्नास्वामी शास्त्री, सुब्बरय शास्त्री, पंचनाद अय्यर और अन्य।

20वीं शताब्दी में हजारों प्राचीन संगीत रचनायें प्रकाश में आईं और स्वर लिपि सहित प्रकाशित हुईं। ग्रंथ प्रकाशित हुए और नई म्यूजिकोलोजी की पुस्तकें प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा लिखी गईं जिन्होंने शिक्षकों और विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। वर्तमान सभा गान के विचार का उद्गम 18वीं शताब्दी में किसी समय हुआ। अब सभा गान प्रचलित हो गया है। राजसी संरक्षण के स्थान पर अब कलाकारों को कला प्रेमी लोग तथा निजी श्रोता गण प्रायोजित करते हैं। मनोधर्म संगीत, रागतानम और पल्लवी सभा गान के मुख्य आकर्षण हैं। संगीत रचनायें, विशेष रूप से कृतियां तकनीकी तथा साहित्यिक सौंदर्य से भलीभांति अलंकृत हुईं। इन रचनाओं ने वाग्गेयकार की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रतिनिधित्त्व किया।

टिप्पणी

प्राचीन समय के सभा गान की तुलना में वर्तमान सभा गान में समय की सीमा और एक सामान्य रूप होता है जिसका परंपरागत गायक द्वारा अनुगमन किया जाता है। संगीत शुद्ध कला के रूप में अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

दक्षिण भारतीय सभा गानों में वायलिन एक आवश्यक संगत वाद्य हो गया है। वीणा और अन्य भारतीय वाद्यों को मिलानेध आंगुलिक मुद्रा आदि के स्वर संबंधित गुण और गमक अलंकारों को विकसित करने के लिये नई तकनीकों का विकास किया गया है। कर्नाटक संगीत के लिये मेंडोलिन, सैक्सोफोन आदि जैसे पाश्चात्य संगीत वाद्य अपनाये गये हैं। संगीत शिक्षण पद्धति भी परंपरागत गुरुकुल पद्धति से संस्थागत शिक्षण तथा व्यक्तिगत निजी शिक्षण में परिवर्तित हुई है। विद्यार्थियों के लिये एक समय में एक से अधिक गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करना सामान्य है। चूंकि विद्यार्थी संगीत की भिन्न पद्धतियों के संपर्क में आता है, अतः वह किसी विशेष पद्धति या बानी का संगीत सभा, गोष्ठी, व्याख्यान प्रदर्शन जो प्रसिद्ध संगीत सभाओं, संस्थाओं और संगठनों में होते हैं जहां संगीत विचारों का आदान प्रदान होता है, वहां प्रतिनिधित्त्व करने में असमर्थ है। छ्ढ्वीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीक में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इलेक्ट्रोनिक माध्यम ने परस्पर संचार और नेटवर्क प्रणाली में क्रांति की है। वर्तमान समय में संगीतज्ञ और रचयिता के संगीत और अन्य विवरण भावी पीढ़ी के लाभ के लिये ख्रश्य तथा श्रव्य माध्यम द्वारा चिरकाल तक सुरक्षित और संरक्षित रखे जा सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. सुब्बराम दीक्षितर कौन थे? उनके प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम बताइये। यह ग्रंथ इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है?
2. त्रिमूर्ति में से किसी एक के दो विद्यार्थियों के नाम बताइये।
3. संगीत की बढ़ोतरी के लिये तकनीक में कौन सी प्रमुख प्रगति हुई?
4. आधुनिक समय के सभा गान और शिक्षण प्रणाली के दो प्रमुख लक्षणों के नाम बताइये।

आपने क्या सीखा

विभिन्न लक्षणकारों, इन ग्रंथों के टीकाकारों, महान रचयिताओं, संगीतज्ञों और संरक्षकों के योगदान का भारतीय संगीत का इतिहास एक लिखित प्रमाण है। वर्तमान समय में इलेकट्रोनिक माध्यम तथा परस्पर संचार की प्रगति ने संगीत और म्यूजिकोलोजी दोनों के संरक्षण और परस्पर संचार में अत्यधिक सहायता प्रदान की है। सरल वैदिक स्वरों से उच्च विकसित कलात्मक संगीत के रूप में भारतीय संगीत का परिवर्तन धीमा परंतु सूक्ष्म था। अध्ययन से प्रतीत होगा कि वैदिक ;चाओं के पाठ के संगीत की समृद्ध परंपरा और प्रणाली वास्तव में संगीत कला के आगामी विकास के लिये मूल सिद्धांत है। यह परिचयात्मक अध्याय संक्षेप में संगीत विरासत के महत्त्व को प्रकाशित

टिप्पणी

करेगा। यह विकास वैदिक काल से वर्तमान काल की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा है। राग, संगीत विधायें, ताल, संगीत वाद्य, स्वर लिपि तथा अन्य क्षेत्रों में बहुमुखी विकास हुआ है।

आजकल हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत पद्धतियों में परस्पर सम्वाद है। जुगलबंदी एक प्रचलित विचारधारा के रूप में उभर रही है, जिसमें संगीत की दोनों पद्धतियां संगीत प्रेमियों का एक ही मंच पर मनोरंजन करती हैं। कर्नाटक संगीत ने विश्वव्यापी प्रसिद्धी प्राप्त की है। हमारे हमारे संगीतज्ञ संगीत सभा गान तथा विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान प्रदर्शन कर रहे हैं तथा विश्वव्यापी "यूजन संगीत का भाग बन गये हैं। पाश्चात्य स्वर लिपि द्वारा हमारी रचनायें अधिक से अधिक भारत के बाहर लोगों तक पहुंच रही हैं। इन सब आधुनिक रूपों और प्रवृत्तियों के होते हुए भी कर्नाटक संगीत परंपरागत ढांचे के अंतर्गत आध्यात्मिक अंतरधारा में निरंतर बढ़ रहा है।

पाठांत अभ्यास

1. उन तीन कालों का वर्णन कीजिये जिनमें संगीत का अत्यधिक विकास हुआ।
2. 18वीं शताब्दी को संगीत का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है? वर्णन कीजिये।
3. संपूर्ण मेल पद्धति के विषय में विस्तारपूर्वक लिखिये।
4. संगीत में नाट्यशास्त्र के महत्त्व और उसके योगदान का वर्णन कीजिये।
5. पुरंदर दास को कर्नाटक संगीत का पितामह क्यों माना जाता है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. संगीत में प्राचिन, मध्य तथा आधुनिक काल
2. 13वीं शताब्दी के लगभग भारतीय संगीत हिंदुस्तानी और कर्नाटक प्रणाली, दो भागों में विभाजित हो गया।
3. सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनायें, तीन लय (गति), नव रस, तीन स्थान (सप्तक), 22 श्रुतियां।
4. कुडुमियामलई शिलालेख शास्त्रीय संगीत के आरंभिक प्रमाण हैं।
5. क्योंकि संगीत ग्रंथ संगीत की वृद्धि के मार्ग को प्रकाशित करते हैं तथा भविष्य के लिये लक्ष्य और लक्षणों को सुरक्षित रखते हैं। जैसे-
   1. भरत- नाट्यशास्त्र
   2. मतंग- बृहद्देशी

6. कुतप प्राचीन काल के वाद्य वृंद को कहते हैं।

7. भारतीय संगीत के सप्त स्वर फारसी और अरब देशों से होते हुए पश्चिम पहुंचे और उन्होंने चर्च संगीत को C, D, E, F, G, A, B रूपांतरित नामों के रूप में प्रभावित किया।

1.2

1. हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत पद्धति का विभाजन सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है।

2. उत्तर भारत मुस्लिम शासकों से प्रभावित हुआ तथा उनके राजसी दरबारों में ारसी और अरबी संगीत का प्रभाव पड़ा। इसकी तुलना में दक्षिण भारत अप्रभावित रहा और पारंपरिक हिंदु राजाओं द्वारा प्रोत्साहित होकर वहां शास्त्रीय धारा चलती रही।

3. पुरंदर दास, कबीर दास, मीराबाई

4. क्योंकि भक्ति आंदोलन के सैंकड़ों संत गायकों ने कई रागों तथा प्रादेशिक भाषाओं में रचनायें की जिन्हें लोगों ने बहुत

5. (अ) व्यंकटमखी– चतुरदंडी प्रकाशिका

   (ब) रामामात्य– स्वरमलकलानिधि

6. क्योंकि उन्होंने कर्नाटक संगीत के लिये अत्यधिक वैज्ञानिक क्रमबद्ध मेल पद्धति दी।

7. गोविंदाचार्य ने 72 संपूर्ण मेल पद्धति का प्रचलन किया।

8. गोविंदाचार्य की संपूर्ण मेल पद्धति वर्तमान संगीतज्ञों द्वारा प्रयोग की जाती है।

1.3

1. क्योंकि 18वीं शताब्दी में न केवल हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत बल्कि पाश्चात्य संगीत में भी अप्रत्याशित विकास और उन्नति हुई। वहां भी संगीत की त्रिमूर्ति का स्वर्ण युग था।

2. रागों का बड़ी संख्या में उद्भव, सरलीकृत ताल पद्धति, विभिन्न विधाओं में बहुत सी रचनाओं का निर्माण और बहुत से उत्तम योग्यता के रचयितओं और म्यूजिकोलोजिस्ट के होने से स्वर्ण युग का आगमन हुआ।

3. पोनिया, मार्गदर्शी शेशा अय्यंगर, मेलत्तुर वीर भदरय्या, वीना कुप्पियर,पल्लवी गोपाल अय्यर तथा अन्य।

4. श्री श्यामा शास्त्री, श्री त्यागराज तथा श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितर कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति के रूप में जाने जाते हैं।

5. जयदेव ने गीतगोविंद की रचना की।
6. प्रहलाद भक्ति विजयम त्यागराज द्वारा रचित ओपेरा है।
7. प्राचीन प्रबंध सभी प्रकार की कर्नाटक संगीत की रचनाओं का उद्गम स्रोत हैं।
8. श्यामा शास्त्री– नवरत्नमालिका

   त्यागराज– घन राग पंचरत्न

   दीक्षितर– नवग्रह कृति

1.4

1. सुब्बराम दीक्षितर बालु स्वामी दीक्षितर के नाती थे। बाद में उन्होंने उन्हें अपने पुत्र के रूप में गोद लिया। उन्होंने संगीत संप्रदाय प्रदर्शिनी लिखी। यह दीक्षितर परंपरा की क्रमबद्धता है।
2. श्यामा शास्त्री के विद्यार्थी– संगीत स्वामी, पंचनाद अय्यर और अन्य।

   त्यागराज के विद्यार्थी– वालाजपेत व्यंकटरमन भागवतर तथा वीना कुप्पियर आदि।

   दीक्षितर के विद्यार्थी– पोनिया, अय्यास्वामी, एत्तयापुरम के राजा आदि।
3. संगीत और ज्ञान का विस्तार करने में इलेक्ट्रोनिक माध्यम में तकनीकी उन्नति, अच्छी छपाई और प्रकाशन तकनीक और संचार नेटवर्क ने अत्यधिक योगदान दिया।
4. सभा गान रूजनता और सभाओं के लिये आधुनिक समय में सभा गान समय बद्ध है। वायलिन और मृदंग दक्षिण भारतीय सभा गान के लिये विशेष संगत के रूप में उभर कर आये।

   शिक्षण प्रणाली, गुरुकुल प्रणाली से संस्थागतध व्यक्तिगत धनिजी शिक्षण में परिवर्तित।

निर्देशित कार्य कलाप

1. प्राचीन काल और आधुनिक काल के संगीत लक्षणों की एक तुल्नात्मक टिप्पणी दीजिये।
2. जब आप किसी रचना को सुनते हैं तो राग का नाम और रचयिता का नाम जानने का प्रयत्न कीजिये।
3. आप के द्वारा अब तक सीखी गई रागों की सूचि बनाइये।